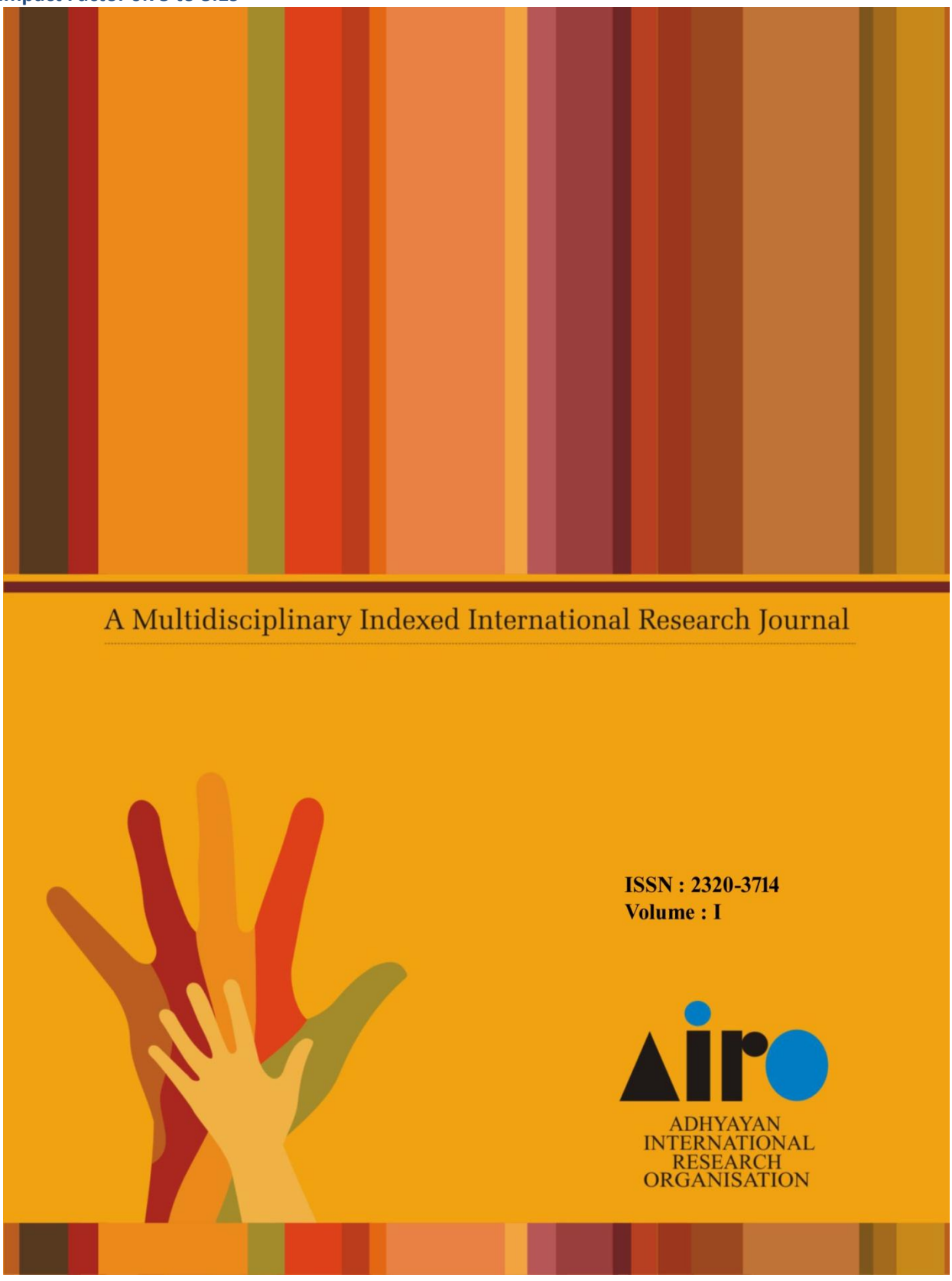
A Multidisciplinary Indexed International Research Journal
ISSN : 2320-3714
Volume : I
Airo
ADHYAYAN
INTERNATIONAL
RESEARCH
ORGANISATION

Airo International Research Journal **March, 2013**
Volume I, ISSN: 2320-3714
Impact Factor 0.75 to 3.19

हिन्दी भाषा का उद्भव: परम्परा और सम्भावनाएं

Bikki Singh
Research Scholar Sainath University

Declaration of Author: *I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.*

सारांश:

हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अप्रभंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गये हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं आठवीं शताब्दी से ही पद्म-रचना प्रारम्भ हो गयी थी।

प्रस्तावना:

भारत में इस्लाम के आने से पहले ही हिन्दी भाषा का आविर्भाव हो चुका था। हिन्दी का भाषा रूप विकास की विभिन्न स्थितियों में , धरती की प्राचीन सुरभि से सम्पृक्त रहा है। बुजुर्ग-बिन-शहरयार की अरबी किताब "अजायबुल हिन्द" में लिखा है कि अब्दुल्लाह इराकी ने हिन्द के राजा अलूरा के लिए सन् 270 हिजरी (852 ई.) में कुरान का हिन्दी जुबान में अनुवाद किया था। तथा कलिंजर के राजा नन्द ने 413 हिजरी (1023 ई.) में सुल्तान महमूद की शान में हिन्दी में एक शेर लिखा था। उस समय भाषा को भाखा कहा जाता था और कविता एवं बोलचाल की भाषा अलग-अलग थी। आम मुसलमान हिन्दी में बोलता था जिसे नागरी कहते थे और उसमें संस्कृत शब्द प्रमुखतया रहते थे। मुसलमान राजा भी संस्कृत वाली हिन्दी का ही प्रयोग करते थे। कविता की भाषा ब्राजभाषा या अवधी थी। यह स्थिति औरंगजेब के शासनकाल तक विद्यमान थी। दरबारों में फारसी नवीस के साथ साथ हिन्दी नवीस भी रखे जाते थे , जहां जनसम्पर्क में हिन्दी का ही प्रमुखतया प्रयोग होता था। राहुल सांस्कृत्यायन ने अब्दुल रहमान को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। जन सामान्य खुसरो को यह स्थान देता है।

खुसरो की रचनाओं में ऐतिहासपरक विरह-मिलन के जो मर्मस्पर्शी चित्रण मिलते हैं वे भारतीय परम्परा के आदर्श हैं। उनमें अरबी-फारसी भाषा का शब्द जाल नहीं मिलता है। वे भाषा विकास की सहज स्वाभाविक गति की देन हैं। बोलचाल की भाषा में उनकी मुकरियां हिन्दी गद्य विकास क्रम का संकेत देने में सहायक हैं।

खुसरो की मृत्यु के कोई 28 वर्ष पूर्व ही नरपति नाल्ह ने वीसलदेव रासो की रचना की थी। उसके पूर्व चन्द बरदाई की पृथ्वी राज रासो से रासो परम्परा का प्रारंभ हुआ था। उसमें अपभ्रंश के शब्दों का बाहुल्य था जिसको लेकर खुसरो आगे बढ़े और अपनी मुकरियों और पहेलियों में ब्राजभाषा को लेकर एक नई दिशा की ओर भाषा प्रवाह को मोड़ने का प्रयत्न किया। वास्तव में नरपति नाल्ह की भाषा परम्परा ही आगे चलकर खुसरो के हाथों जन भाषा का रूप लेने लगी। ख्ुसरो के सौ वर्ष पूर्व का भाषा रूप हेमचन्द्र की पंक्तियों में देखें-

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु।

खुसरो के लगभग 70 वर्ष बाद का नामदेव महाराज की रचना का विकसित भाषा रूप देखें-

माई न होती , बाप न होते , कर्म न होता काया

हम न होते , तुम नहिं होते , कौन कहां ते आया।

उक्त भाषा रूपों से स्पष्ट है कि आज की खड़ी बोली का आविर्भाव का स्रोत क्या है। स्पष्ट है कि उस पर इस्लामी शासनकाल में अरबी और फारसी के आरोपण के प्रयास कभी प्रभावी नहीं रहे।

हिन्दी गद्य के प्रारंभिक दौर में ब्राजभाषा और राजस्थानी तथा प्राकृत , अपभ्रंश के अंकुर मिलते हैं। अकबर तक आते आते खड़ी बोली का गद्य गंग कवि की चन्द बन्द बरनन की महिमा में बिखरता चमकता दिखाई देता है। भाषा विकास की धारा मुसलमानों के आने के समय इसी दिशा में प्रवाहित थी। सूफियों को यही भाषा रूप प्रिय लगा। जायसी , कुतुबन और नूरमुहम्म्द ने सूफी होकर भी भाषा के इस सौंदर्य-सामथ्र्य को समझा। सभी सूफी संतों ने भारत के जीवन से विषय वस्तु ग्रहण की किन्तु सूफी मत तक सीमित हो जाने के कारण वे इसकी पृष्ठभूमि में भारतीय आध्यात्म की विशिष्टता को वाणी न दे सके और सीमित रह गए। किसी भी हिन्दू कवि ने उनका अनुसरण नहीं किया और न उन कवियों के अनुकरणकर्ता ही भारत की मुख्यधारा में कोई स्थान बना सके। रीतिकाल तक रहीम , रसखान, आलम, रसलीन, शेख मुबारक जैसे उदार मुसलमान कवि असाधारण रूप से विरह और प्रेम के आख्यान प्रस्तुत करते रहे किन्तु वे भी भारतीय जनमानस का अन्तर स्पर्श करने से चूक गये। आधुनिक युग में यही पीड़ा कलाकार जावेद अख्तर की है। सूफी कवि अपनी सूफी दृष्टि में भारत के

आध्यात्मिक दर्शन का आत्मसात् न कर सके और मुख्यधारा में स्थान पाने से वंचित रहे। यही हाल राष्ट्रीय प्रतिबद्धता से मुक्त , धर्म और अध्यात्म को अफीम मानने वाले वामपंथी रचनाकारों का है , जो भारत की धरती की सुरभि से वंचित होकर मुख्यधारा से कटने को अभिशप्त हैं। शायद इसीलिए जावेद अख्तर अरबी-फारसी को भारत की भाषा बताना चाहते हैं और अरबी-फारसी प्रधान उर्दू की कोख से हिन्दी का जन्म सिद्ध करने की आकांक्षा रखते हैं।

साहित्य की समीक्षा:

यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारत में इस्लाम आया तो इस्लामीकरण के अन्तर्गत मुट्ठीभर विदेशी-देशी मुसलमानों ने , जहां भी उनका शासन बना , बहुसंख्यक हिन्दुओं पर उनकी भाषा को अनदेखा करके , अरबी और फारसी राजभाषा के रूप में बलात् लाद दी। दुनिया में भाषा का ऐसा मजहबीकरण कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा। पाकिस्तान का ही उदाहरण लें। पाकिस्तान बनते ही वहां उर्दू को राजभाषा का पद दे दिया गया। उर्दू यानी अरबी-फारसी की गोद में पली भाषा। वास्तविकता यह थी कि पाकिस्तान के किसी भी प्रदेश की भाषा कभी उर्दू थी ही नहीं। बिलोचिस्तान की बिलोची , सिंध की सिंधी, पंजाब की पंजाबी , बंगाल की बंगाली , पठानों की पख्तूनी भाषाएं थीं तो फिर यह उर्दू कहां से आ गई ? आज जब हमारे उदार कलाकार पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू को हिन्दी का जनक मानने पर तुले हैं तो लगता है कि वे भारत की आत्मा से कितनी दूर पड़े हैं? अमीर खुसरो को वे क्यों भूले हैं , जिन्होंने कहा था- "उस समय लाहौरी , कश्मीरी, डोगरी, गुजराती, गौडी (लखनवी) , बंगाली, अवधी, देहलवी और संस्कृत आदि भाषाएं पहचान रखती थीं। बाहर से आने वालों की मातृभाषा फारसी , अरबी या तुर्की थी।"

श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी का मानना है कि "हिन्दी में फारसी और तुर्की शब्द बढ़ाने और फारसी मुहावरे चला देने से उर्दू का जन्म हुआ। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी के बिना उर्दू एक पल नहीं चल सकती और उर्दू के बिना हिन्दी में महाग्रंथ लिखे जा सकते हैं।" उर्दू के विद्वान भी इस कथन से सहमत हैं। उस्मानिया कालेज के प्रोफेसर मौलवी वहीउद्दीन लिखते हैं-"उर्दू जिस जमीन पर खड़ी है वह जमीन हिन्दी की है।" अफसोस है कि उर्दू के शायर इस रहस्य को समझ नहीं सके। अपनी कट्टरता , जुनून और मजहबी जोश में उनको फारसी अरबी के सिवाय और कुछ नहीं सूझा। आज भी जावेद अख्तर जैसे कतिपय कलाकार हैं , जो भारतीय अतीत से जुड़ न सके हैं , उनकी वाममार्गी निगाहें धर्म को अफीम और सभ्यता को बर्बरता एवं कबीलेपन का परिधान मानती हैं। परिणामस्वरूप जब भी उर्दू के शायरों ने भाषा पर अरबी-फारसी का रंग चढ़ाया , फारसी अदायें लादीं , वे अपने

दायरे में कैद होकर जन जीवन से दूर जा पड़े। देश की भावात्मक एकरुपता से न जुड़कर उन्होंने भाषा का एक साम्प्रदायिक रूप खड़ा करना चाहा। औरंगजेब के पहले तक साम्प्रदायिक उर्दू जैसा कोई रूप नहीं निखर पाया था। औरंगजेब भी शुरू में देशज भाषा बोलता था। बाद में इस्लामी जुनून से उसने अरबी फारसी अपना ली।

डा. धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि उर्दू का जन्म खड़ी बोली में संस्कृत और हिन्दी के शब्दों को निकाल कर हुआ। सुनीत कुमार चटर्जी भी कहते हैं कि जब हिन्दी में एक पंक्ति में कहीं कहीं छितरे छितरे रूप में फारसी शब्द आते थे तो उसको रेख्ता कहा जाता था किन्तु जब थोक भाव से विदेशी शब्दों को लादना शुरू हुआ , ईरान के भावों का भारतीय धरती पर वपन किया गया तो भाषा से हिन्दी शब्द हटाये गये और अरबी फारसी के शब्द ठूंस ठूंस कर भरे गये। उर्दू की बस यही करुण कहानी है।

इस्लाम का जिन क्षेत्रों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था, उन क्षेत्रों की भाषा पर अरबी-फारसी के आरोपण का भी प्रभाव मिलता है। इनमें सिंधी, कश्मीरी और पंजाबी क्षेत्र आ जाते हैं। आर्यभाषा परिवार की भाषाएं होकर भी ये भाषाएं ईरानीकरण से बच न सकीं। हिन्दी क्षेत्र में ऐसा संभव नहीं था। वहां का भाषा क्षेत्र संस्कृतनिष्ठ बना रहा। यह अवश्य हुआ कि राजभाषा होने पर कुछ लोगों ने अरबी फारसी सीखी किन्तु संतों और साधकों का ऐसा जबर्दस्त प्रभाव था कि वे पूरा समाज ब्राजभाषा और अवधी के माध्यम से संस्कृतनिष्ठ ही रहा जिसका प्रभाव हिन्दी के विकासक्रम पर पड़ा। भाषा अपने प्राचीन स्रोत से अलग न जा सकी। इन संतों और भक्तों में -तुलसी, सूर, केशव, बिहारी, मतिराम आदि रचनाकारों में कोई भी मुसलमान विरोधी न थे किन्तु सभी ने हिन्दी भाषा को उसकी संस्कृत परम्परा में ही स्वीकार किया। उनकी रचना वास्तव में हिन्दी थी। उसको हिन्दुई, हिन्दवी, रेख्ता आदि उपनामों से नहीं जाना जाता था अपितु , भारवा कहा गया। कुछ उदाहरण देखिए-

कबीर - संसकिरत है कूप जल, भाखा बहता नीर

रज्जब - पराकिरत अधि उपजे, संसकिरत सब पद

अब समझावै कौन, करि पाया भाषा-पद

जायसी- आदि अत जस गाथा अही, रुह चौपाई भाखा कही,

1698 ई. में कविवर भिखारीदास की घोषणा थी--

ब्राजभाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोस कोय

मिले संस्कृत परस्यो, भै अति सुगम जु होय।।

ऐसा भी नहीं है कि हिन्दी भाषा पर अरबी-फारसी बिना कुछ प्रभाव डाले रह गई हो। उस युग में राजकर्मियों ने, हिन्दी शासकों ने तथा अनेक विद्वानों ने अरबी-फारसी पढ़ी थी और उसका प्रयोग भी किया था। किन्तु संस्कृत, अपभ्रंश, पाली और प्राकृत की स्वाभाविक धारा प्रवाह में आविर्भूत हिन्दी खड़ी बोली का रूप भारत की धरती से जुड़ा रहा और बाह्य प्रभाव को भी आत्मसात् कर मुख्यधारा में ला दिया। अन्य भाषाओं में मराठी और गुजराती में भी फारसी और अरबी के शब्द आये किन्तु उनको साहित्यिक वैयाकरण के नियमों की मर्यादा में ग्रहण किया गया। अनेक इतर शब्दों की स्वभाषा में स्वीकृति नियमानुसार होने से भाषा की पाचन शक्ति दृढ़ होती है और आज भी अपने मूलरूप से अलग नहीं जाती। हिन्दी का भी ऐसा ही हाल रहा , तुलसी के रामचरितमानस तक में ऐसे शब्द हैं जो अरबी-फारसी के हैं और उनकी संख्या भी कम नहीं है , किन्तु वे सभी शब्द व्याकरण सम्मत होकर भारतीय परम्परा का अंग बन जाते हैं। उनका विदेशी रंग गायब हो जाता है, भारतीयता की अभिव्यक्ति-क्षमता का सौष्ठव उनमें आ जाता है।

बाबूराम सक्सेना ने उर्दू की पहली शक्ल की पहचान "दह मजलिस" की तुकबन्दियों में देखी है। फजली की दह मजलिस योग वशिष्ठ के दस वर्ष पूर्व 1145 हिजरी 1732 ई. में लिखी गई थी जिसका टूटा फूटा गद्य हिन्दी का ही है क्योंकि तब उर्दू नाम की कोई चीज ही नहीं थी। यह जरूर है कि उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी के प्रथम चार गद्यकारों में रानी केतकी की कहानी के लेखक मुंशी ईशा अल्ला खां का भी नाम जोड़ा है। कट्टर मुसलमान होकर भी वे हिन्दी में लिखने को विवश थे। इस्लाम के प्रभाव का सही आकलन डा. रामधारी दिनकर ने अपनी पुस्तक "संस्कृत के चार अध्याय" में किया है (भूमिका लेखक पं. जवाहरलाल नेहरू)। उन्होंने अपने निष्कर्ष में डा. ताराचन्द की द्वितीय पुस्तक को उद्धृत किया है। डा. ताराचन्द का निष्कर्ष है "दोनों वर्ग (हिन्दू और मुसलमान) एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक बने रहे। उनके बीच पारस्परिक आदान प्रदान में धर्म , भाषा, रीति रिवाज तथा सामान्य स्थितियां रुकावट बनीं। दोनों की अपनी अलग अलग दुनिया थी। कभी न टूटने वाली दीवार से वे अलग बंटे हुए थे। कभी कभार एक मुसलमान दरवेश या एक हिन्दू योगी विचार आदान हेतु मिल जाते थे अन्यथा धार्मिक आध्यात्मिक खाई दोनों वर्गों में निरन्तर चौड़ी बनी रही।" स्पष्ट है कि अरबी-फारसी प्रधान उर्दू का भारत में खपना कदापि संभव नहीं था तथा हिन्दी का अभ्युदय रुकना असंभव था।

अंग्रेजों के आगमन के समय ग्रामीण अंचलों में मुंशी सदा सुखलाल "नियाज" का सुख सागर (1746 ई.) प्रचलित था। इसका गद्य अपेक्षाकृत सुन्दर और सुगढ़ था। अंग्रेजों के प्रयत्न से फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। इसने भी हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाने की योजना बनाई। यद्यपि इसके बहुत पूर्व हिन्दी में योग वशिष्ठ , पद्मपुराण और सुखसागर जैसी रचनाएं आ चुकी थीं। फोर्ट विलियम कालेज ने एक ओर उर्दू को प्रोत्साहन देने के लिए अरबी और फारसी जानने वाले मौलवी रखे तो दूसरी ओर गुजरात के लल्लू लाल और बिहार के सरल मिश्र की नियुक्ति की गई ताकि वे हिन्दी की रचनाएं कर सकें। इन्होंने हिन्दी गद्य में जो रचनाएं कीं उससे गद्य पुष्ट हुआ और विकास का मार्ग पा सका। राजा लक्ष्मण सिंह 1828-1869 ने इस प्रयास को आगे बढ़ाया। अंग्रेजों के शासन काल में हिन्दी भाषा "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति" के मूल मंत्र से पल्लवित हुई। अंग्रेजी शासन की भाषा भले ही अरबी-फारसी बनी हो , जनभाषा प्रवाह खड़ी बोली का ही रहा। शासन की विवशता थी जनसम्पर्क करने की और हिन्दी ही वह माध्यम था जिससे संवाद संभव था। अंग्रेजी साम्राज्य भी देशी राजाओं पर टिका था जहां हिन्दी चलती थी , मुसलमान शासकों के क्षेत्र भी हिन्दू बहुल थे अत: हिन्दी को दुर्लक्ष करना असंभव था। उधर ईसाई पादरी घात लगाए थे कि शासन की ओट में ईसाई बनाए जाएं , धर्म परिवर्तन किया गया। इसके लिए भी उनको जनसम्पर्क हेतु जनभाषा अपनानी पड़ी और वह भाषा हिन्दी ही थी। हिन्दी में उन्होंने पुस्तकें लिखवाईं , प्रचार-पत्रक छापे , भाषणबाजी की और इस प्रकार हिन्दी प्रचार में योगदान किया। पुनर्जागरण काल में अनेक संस्थाएं बन गईं जिससे हिन्दी प्रचार बढ़ा। आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानन्द सरस्वती और श्रद्धाराम फिल्लौरी सामने आये। स्वतंत्रता-संग्राम की भाषा भी हिन्दी बनी। गुजरात के गांधी और बंगाल के सुभाष बोस तथा महाराष्ट्र के तिलक , गोखले सभी ने हिन्दी अपनाई। आज हिन्दी देश की सम्पर्क भाषा बनी है उसका कारण उसका बहुभाषी क्षेत्र का होना नहीं है , अपितु उसको प्रतिष्ठा दी है भूगोल ने नहीं , इतिहास ने। राष्ट्र की ओजस्विनी वाणी की अभिव्यक्ति हिन्दी में ही हुई है। सम्पर्क भाषा की क्षमता संस्कृत आधारित हिन्दी में ही है।

हिंदी का महत्व

हिंदी शब्द का सम्बंध संस्कृत शब्द सिन्धु से माना जाता है। 'सिन्धु' सिन्ध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। कहते हैं, ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स्' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफ़ग़ानिस्तान के बाद सिन्धु नदी के इस पार हिन्दुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन

फ़ारसी साहित्य में भी 'हिन्द', 'हिन्दुश' के नामों से पुकारा गया है। मान्यता है कि यह सिन्धु शब्द ही ईरानी में जाकर 'हिन्दू', हिंदी और फिर 'हिन्द' हो गया। अरबी एवँ फ़ारसी साहित्य में भारत (हिन्द) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'ज़बान-ए-हिंदी', पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी बोलने वालों ने 'ज़बान-ए-हिंदी', 'हिंदी जुबान' अथवा 'हिंदी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। बाद में इसी क्षेत्र को खड़ी-बोली हिंदी का क्षेत्र कहा गया।

हिंदी हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द-आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है। हिन्द-आर्य भाषाएँ उन्हें कहा जाता है , जो संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। स्पष्ट है कि, हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर अधिकांशत: संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करती है।

हिंदी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। हिंदी भाषा व साहित्य के विद्वान अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ठ' से हिंदी का उद्भव मानते हैं, जिसे पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' नाम दिया।

हिंदी का क्षेत्र बहुत विशाल है तथा हिंदी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। कबीरदास , सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, मलिक मुहम्मद जायसी , बोधा, आलम, ठाकुर जैसे कवियों की रचनाएँ इसका उदाहरण हैं। इन बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिंदी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिंदी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिंदी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी , ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, झारखंडी, कुमाउँनी, मगही आदि।

हम जानते हैं कि किसी भी आजाद देश की अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है , जो उसका गौरव होती है तथा राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र के स्थायित्व के लिए पूरे देश में उसका उपयोग होता है। इसी तरह देश की अपनी एक राजभाषा भी होती है , राजभाषा मतलब सरकारी कामकाज की भाषा और जिससे एक आम नागरिक भी सरकार के कामकाज को समझ सके। हिंदी को भारत में राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। किसी भी भाषा को राजभाषा बनने के लिए उसमें सर्वव्यापकता , प्रचुर साहित्य रचना, बनावट की दृष्टि से सरलता और वैज्ञानिकता , सब प्रकार के भावों को प्रकट करने की सामर्थ्य आदि गुण होने अनिवार्य होते हैं। यह सभी गुण हिंदी भाषा में हैं।

प्राकृत भाषा एवं उसका महत्त्व:

प्राकृत भाषा भारत की भाषा है। यह जनभाषा के रूप में लोकप्रिय रही है। जनभाषा अथवा लोकभाषा ही प्राकृत भाषा है

। इस लोक भाषा 'प्राकृत' का समृद्ध साहित्य रहा है , जिसके अध्ययन के बिना भारतीय समाज एवं संस्कृति का अध्ययन अपूर्ण रहता है। प्राकृत में विविध साहित्य है। यह जैन आगमों की भाषा मानी जाती है। भगवान महावीर ने भी इसी प्राकृतभाषा के अर्धमागधी रूप में अपना उपदेश दिया था । यह शिलालेखों की भी भाषा रही है। हाथीगुफा शिलालेख , नासिक शिलालेख , अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में ही हैं । कथा साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन रचना बड्ढकहा (बृहत्कथा) भी प्राकृत भाषा में ही लिखी गयी थी। पादलिप्तसूरी की तरंगवई, संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी , हरिभद्रसूरि विरचित समराइच्चकहा , उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला आदि कृतियाँ उत्कृष्ट कथा —साहित्य की निदर्शन है। विमलसूरि विरचित 'पउमचरियं' जैन रामायण का ग्रन्थ है जो प्राकृत में ही लिखा गया है। जंबूचरियं , सुरसुन्दरीचरियं, महावीरचरियं आदि अनेक प्राकृत चरितकाव्य हैं जिनके अध्ययन से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का बोध होता है। हालकवि की गाहासतसई (गाथा सप्तशती) बिहारी की सतसई का प्रेरणास्रोत आधारग्रन्थ रही है। गाहा सतसई शृंगाररस प्रधान काव्य है , जिस पर १८ टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। रुद्रट , मम्मट, विश्वनाथ आदि काव्य शास्त्रियों ने गाहासतसई की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तथा संस्कृत के काव्यशास्त्रों में गाहासतसई कवि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने इस पर 'सर्वङ्कषा' संस्कृत टीका लिखी है । जयवल्लभ द्वारा रचित 'वज्जाग्ग' भी प्राकृत की एक महत्वपूर्ण रचना है , जिसमें प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में कहा है।

ललिए महुरक्खरए जुवईयणवल्लहे ससिगारे।

सन्ते पाइयकव्वे को सक्कइ सक्कयं पढिउं।।

अर्थात् ललित एवं मधुर अक्षरों से युक्त , युवतियों को प्रिय तथा शृंगाररसयुक्त प्राकृत काव्य के होते हुए संस्कृत को कौन पढ़ना चाहेगा। यह कथन प्राकृत की महत्ता को सुबोधता, सुग्राह्यता, सरसता आदि विशेषताओं से स्थापित करता है। वाक्पतिराज के गउडवाहो में कहा है—

सयलाओ इमं वाया विसंति , एत्तो य णेंति वायाओ।

एंति समुद्ध चियं णेंति सायराओ च्चिय जलाइं।।

समस्त भाषाएँ प्राकृत भाषा में ही प्रवेश करती हैं तथा सभी भाषाएँ प्राकृत भाषा से ही निकलती हैं। यह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि समस्त जल समुद्र में ही जाकर गिरता है तथा समुद्र से ही निकलता है।

संस्कृत जहाँ संस्कारित अथवा परिष्कृत भाषा है, वहाँ प्राकृत लोकभाषा है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्राकृत भाषा का उद्भव कब हुआ ? कुछ विद्वान् इसे संस्कृत से उत्पन्न मानते हैं , किन्तु जनभाषा को

संस्कृतभाषा से उत्पन्न नहीं माना जा सकता। प्राकृत में एवं वैदिक संस्कृत में अनेक भाषा है एवं संस्कृत अलग। संस्कृत जहाँ शिक्षितों की भाषा है वहाँ प्राकृत आमजन की भाषा है। प्राकृत एवं संस्कृत में ही भेद है जो हिन्दी एवं मारवाड़ी में है। हाँ , यह अवश्य है कि जिस प्रकार मारवाड़ी एवं हिन्दी में परस्पर संवाद सम्भव है इसी प्रकार प्राकृत एवं संस्कृत में भी संवाद सम्भव है। संस्कृत नाटकों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। वहाँ शिक्षित ऋषि , राजा आदि संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं तथा रानी , विदूषक, नटी, द्वारपाल, सभी स्त्री पात्र एवं सामान्यजन प्राकृत भाषा में अपने विचार सम्प्रेषित करते हैं।

उपसंहार:

हिंदी का सम्बन्ध मूलतः हिंद अथवा हिन्दू आदि शब्दों से है | हिंदी अथवा हिन्दू की अनेक व्युत्पत्तियाँ मिलती है | कुछ संस्कृत पंडित इसे हिन् (नष्ट करना) दू (दुष्ट) अर्थात् दुष्टों को नष्ट करने वाला मानते हैं तो कुछ की द्रष्टि में इसकी व्युत्पत्ति है – हीन + दु अर्थात् हीनो (मलेछो) का दलन करने वाला | शब्द कल्पद्रुम में हिन्दू को हीन + दुष + डु अर्थात् हीनो को दूषित करने वाला माना गया है | इसकी एक व्युत्पत्ति यो हिंसया दूयते, सः हिन्दू की गई है अर्थात् हिंसा को देखकर दुखी होने वाले हिन्दू हैं|

उपर्युक्त सभी व्युत्पत्तियाँ कल्पना मात्र हैं | वास्तविकता यह है कि मूलतः यह शब्द हिन्दू न होकर सं. सिन्धु हैं| सिन्धु शब्द भी संस्कृत का नहीं हैं| डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह द्रविड़ भाषाओं का 'सिंद्' है जो आर्यों के आगमन के पश्चात्संस्क्रतीकरण की प्रवृत्ति के कारण 'सिन्धु' हो गया है | पश्चिमोत्तरभारत की नदी विशेष और उसके आसपास के क्षेत्र को सिन्धु कहा जाता है | भारत के ईरान से प्राचीन व्यापारिक संबंधो के प्रमाण अत्यंत पुष्ट हैं | ईरानियों ने यहाँ आने पर 'सिन्धु' को 'हिन्दू' रूप में उच्चारित किया क्योकि हमारी 'स' ध्वनी वहाँ सदैव् 'ह' (सप्त-हफ्त) और महाप्राण धव्नियाँ अल्पप्राण रूप में उच्चारित किया क्योकि हमारी 'स' ध्वनी वहाँ सदैव् 'ह' (सप्त-हफ्त) और महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण रूप में उच्चारित होती रही है | प्रारंभ में ईरानियों ने सिन्धु नदी और आसपास के क्षेत्र को हिन्दू कहा | धीरे धीरे वे भारत के जितने भू –भाग से परिचित होते गए , उसे 'हिन्दू' कहने लगे और अन्ततः 'हिन्दू' शब्द पुरे भारत का वाचक हो गया | अन्त्य 'उ' के लोप से यह 'हिन्द का' | यह 'हिन्दिक' बना जिसका अर्थ है हिन्द का –में प्रचलित रहा|

हिंदी भाषा का सम्बन्ध संस्कृत और इस कारण भारोपीय भाषा – परिवार से है भारोपीय परिवार को इन्दोकेल्तिक , इन्दोजर्म्निक , आर्य आदि नमो से भी जाना जाता है | भारोपीय परिवार की भाषाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है – केतुम

और सतम् | यधपि इस नामकरण का कोई तर्किक आधार नहीं है , तथापि आज ये इसी नाम से जाने जाती है | केतुम वर्ग में ग्रीक, लैटीन, जर्मन, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाएँ आती है | सतम् को पुनः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- रुसी , आम्रीनियम तथा भारत –ईरानी | संस्कृत का विकास भारत –ईरानी की भारतीय शाखा से हुआ है| भारोपीय परिवार की विभिन्न भाषाओं क विकास को वृक्ष रूप में इस प्रकार प्रस्तुत केर सकते हैं|

आधार ग्रन्थ-सूची

- हिंदी के प्रतिनिधि कवि-डा. उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, जयपुर|
- कवि समीक्षा डा. दशरथ ओझा तथा विजयेन्द्र स्नातक , हिंदी प्रिंटिग प्रेस क्वीन्स रोड, दिल्ली|
- हिंदी काव्य में प्रेम भावना – डा. रामकुमार खण्डेलवाल , वाहर पुस्तकालय, मथुरा|
- हिंदी और फारसी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन – डा श्री निवास बत्रा प्रथम संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी|
- हिंदी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य तत्व का निरूपण – डा. श्रीमती देव कपूरिया , आशा प्रकाशन ग्रह|
- मज्झिम निकाय : सम्पादितभिक्षुजगदीशकश्यप, नालंदादेवनागरीसंस्करण, 1958] सम्पादक, बी. ट्रैन्करऔरआरयामर्स, पालिटेक्स्टसोयायटी, लन्दन, 1888–1902] हिन्दीअनुवाद, राहुलसांकृत्यायन, सारनाथ, 2008
- समन्तवासादिका : विनयपिटक की टीका, बौद्धघोष, जे. ताकाकुसुऔर एस. नागी द्वारासम्पादित, पालिटेक्स्ट, लन्दन, 2010–47
- उपासक, चन्द्रिका सिंह : डिक्शनरीऑपफअर्लीबौद्धिस्ट मोनोस्टिकटर्क्स, वाराणसी2008
- कोसम्बी, दामोदर धर्मानन्द : दीकल्चर एण्ड सिविलाइजेशनऑपफ ऐंश्येन्टइण्डिया, इनहिस्टारिकलआउटलाइन, भारतीय संस्करण, दिल्ली2005
- महावंश : सम्पादक, डब्ल्यू, गायगर, पालिटेक्स्टसोसायटी, लन्दन, 2008] अंग्रेजी
- म्मपद : सम्पादक, एस.एस. थेर, पालिटेक्स्टसोसायटी, लन्दन, 1914] अंग्रेजीअनुवाद, एपफ. मेक्समूलर, सेक्रेडकुक्सऑपफदीईस्ट, जिल्द10] (भारतीय संस्करण) दिल्ली2008
- उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ : तान्त्रिाक बौ(साध्नाऔरसाहित्य, नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसंस्करण, सम्वत् 2015